1

पारिवारिक इतिहास

अपने संबंध में लिखना सरल भी है और कठिन भी। सरल तो इस लिए कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह बहुत पढ़ा-लिखा न भी हो, इस कार्य को कर सकता है क्योंकि सब को अपना जीवन प्रिय होता है और उसकी जानकारी के लिए न तो कहीं जाना है और न किसीसे कुछ पूछना है। परंतु यह अत्यंत कठिन भी इसलिए है कि कोई भी व्यक्ति अपनी भूलों और अपनी दुर्बलताओं को संसार के सामने व्यक्त नहीं करना चाहता। जीवन में बहुत कुछ ऐसा होता है जो वह अपने मन में ही ढँका रखना चाहता है और मनोविज्ञान के नियमों के अनुसार तो उसे याद भी नहीं करना चाहता और भुला देता है। फिर उसे लिखकर प्रकाशित करना तो और भी कठिन है। पाठकों की दिलचस्पी उन्हीं बातों में अधिक होती है जिन्हें वह गुप्त रखना चाहता है। यदि वह अपनी विशिष्टताओं और अपने सत्कर्मों का ही डंका पीटे तो सहज ही उस पर पाखंड और दांभिकता का दोष लगाया जा सकता है और यदि वह अपनी दुर्बलताओं को उघाड़कर रख दे तो रहीम की ये पंक्तियाँ उस पर सहज ही चरितार्थ हो सकती हैं —

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय
बाँट न लैहैं लोग सब, जगत हँसाई होय

फिर भी मेरे मन में यह विचार आता है कि आत्मकथा लिखना, कवियों, साहित्यकारों, महान व्यक्तियों, राजनेताओं, और धर्मगुरुओं के लिए अत्यंत आवश्यक है क्योंकि उससे संसार का मनोरंजन ही नहीं, हित भी होता है। जब हम महान व्यक्तियों को भी उन मानसिक दुर्बलताओं का शिकार हुआ पाते हैं तथा उन संकटों के बीच से गुजरता हुआ देखते हैं जिनको हम अपने लिए महान अभिशाप के रूप में समझते हैं तो उन पर विजय पा सकने की आशा से प्रेरित हो जाते हैं। महात्मा गाँधी की जीवनी पढ़कर सहज ही मन में यह विचार उठता है कि संसार के महानतम व्यक्ति को भी किस प्रकार पग-पग पर उन समस्याओं से उलझना पड़ा है जिन्हें लोग अपना दुर्भाग्य मान बैठते हैं। इस विचार से सहज ही हमारे हृदय में नये साहस और उत्साह का संचार हो जाता है। इसी दृष्टि से मैं अपने जीवन की उन घटनाओं को लिपिवद्ध कर देना चाहता

हूँ जो मुझे याद आती जायँगी या जिन्हें मैंने अपने बड़े-बूढ़ों के मुँह से सुन रक्खा है। यह विवरण एक ओर तो मेरी कविताओं के संबंध में कुंजी का काम करेगा, दूसरी ओर बहुत सी परिस्थितियों में मेरे अंतर्द्वंद्वों की झाँकी भी प्रस्तुत करेगा जो मनोरंजक और किसी अर्थ में प्रेरणाप्रद भी हो सकेंगी। और कुछ न हो तो मुझे तो इस प्रयास से अपने जीवन की घटनाओं को फिर से याद करने का सुख मिलेगा ही और मेरे परिवार के भावी सदस्यों को अपने पूर्वजों के चरित्र की झाँकी तो प्राप्त होगी ही। अपने जीवन की घटनाओं और मनःस्थितियों के विषय में तो मैं यह कह सकता हूँ कि वे शत-प्रतिशत सही हैं परंतु अपने पिता या ताऊजी या अन्य परिवार के सदस्यों से सुनी हुई बातों में कितनी सत्य हैं और कितनी अतिरंजित हैं यह निर्णय मैं पाठकों पर ही छोड़ देता हूँ।

यों तो मेरी कविताएँ मेरे अंतर्जगत् का प्रतिबिंब ही हैं और उनसे भी मेरी विभिन्न काल की मनःस्थितियों को समझा जा सकेगा परंतु स्थूल रूप से मेरे जीवन की घटनाओं का विवरण उनकी सम्यक् आलोचना के लिए भी आवश्यक होगा। मैंने, फैशन, वाद या अनुकरण के लिए बहुत कम लिखा है। बिल्कुल नहीं लिखा हैं, ऐसा तो मैं नहीं कह सकता परंतु मेरे काव्य में बहुत कुछ ऐसा है जो मेरे जीवन की किसी घटना से या मेरे किसी अंतर्द्वंद्व से जुड़ा है। **निज कवित्त केहि लाग न नीका** के अनुसार मैं भी यह मानने का साहस या दुस्साहस करता हूँ कि कालप्रवाह में मेरी कविताएँ अपना अस्तित्व बनाये रख सकेंगी और उनके संबंध में मेरे जीवन की घटनाएँ जानने से जिज्ञासा-शांति का सुख, कविताओं की अच्छी पहिचान और साहित्यिक रसास्वादन का भरपूर आनंद मिल सकेगा।

एक और बात भी मैं यहाँ अत्यंत विनम्रता से लिखना चाहता हूँ। अपने जीवन-काल में, किशोरावस्था से लेकर आज तक, मैं हिंदी-साहित्य की अनेक प्रमुख विभूतियों तथा अन्यान्य परम श्रेष्ठ व्यक्तियों के संपर्क में आता रहा हूँ। मेरे इन संस्मरणों द्वारा उनके जीवन की भी अनौपचारिक झाँकियाँ उपलब्ध हो सकेंगी जो साहित्य-प्रेमियों के लिए मनोरंजक होने के साथ ही उन महान पुरुषों के जीवन के मानवीय पक्ष को भी उजागर करेंगी।

मेरा पैतृक परिवार

मेरे परदादा सदासुखजी सन 1830 के आस-पास राजस्थान में जयपुर राज्य के अंतर्गत शेखावाटी के मंडावा ग्राम से चलकर बिहार के गया नगर में आये थे। उनके पूर्वज 20-22 पीढ़ियों से शेखावाटी के नवलगढ़ एवं मंडावा राज्य

के कामदार अर्थात् प्रशासक का पद सँभालते आ रहे थे। यह पद परिवार के सब से बड़े लड़के को उसी प्रकार बिरासत में मिलता था जैसे राजगद्दी का अधिकार राजा के ज्येष्ठ पुत्र को मिला करता था। मेरे परदादा तीन भाइयों में मँझले भाई थे इसलिए मंडावा में उनके करने के लिए न तो कोई काम ही था और न उन पर किसी प्रकार का उत्तरदायित्व ही था। मंडावा राज्य के कामदार का पद बड़े भाई ने सँभाल लिया था जिसके एवज में 100 बीघा जमीन तो मिली ही थी, प्रतिदिन आधा पाव घी, यथेष्ट अन्न-आदि पेटिया के नाम से तथा 5 रु. मासिक की नगद राशि भी प्रति मास राज्य की ओर से उन्हें मिलती थी जिससे सारे परिवार का खर्च आसानी से चलाया जा सकता था। उन दिनों राजस्थान से निकल-निकलकर लोग बंबई या कलकत्ता अर्थोपार्जन के लिए जा रहे थे और उनके विशाल वैभव के किस्से राजस्थान में प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति का, विशेषतः वैश्य परिवार के सदस्यों का हृदय आंदोलित कर देते थे। बड़े भाई के कामदार का पद सँभालने के बाद बाकी दोनों भाइयों के पास यों भी कुछ करने को नहीं था। खंडेलवालों के वैश्य परिवार में जन्म लेने के कारण अन्य वैश्यबंधुओं के समान मेरे पूर्वजों में भी व्यापार करने की प्रवृत्ति जन्मजात थी। मेरे परदादा सदासुखजी ने भी उद्योग करके समृद्धि पाने के उद्देश्य से मंडावा से निकलकर कलकत्ते की ओर प्रस्थान किया। उन दिनों रेलगाड़ी नहीं चली थी अतः उन्हें कानपुर तक की यात्रा ऊँटों से करनी पड़ी। कानपुर में एक धनी महाजन का माल नाव से कलकत्ता जानेवाला था। उन दिनों कलकत्ता माल भेजने के लिए गंगा नदी पर चलनेवाली नाव का ही एक मात्र सहारा था। रेलवे के वैगनों और ट्रकों का युग अभी दूर था। मेरे परदादा को कानपुर में माल ले-जानेवाली एक नाव पर उक्त महाजन द्वारा निगरानी का काम मिल गया जिसके फलस्वरूप वे कानपुर से कलकत्ता तक की यात्रा ही निःशुल्क नहीं कर सके, उन्हें मिहनताने के रूप में चौदह रुपयों का लाभ भी मिल गया। वे चालीस रुपये लेकर मंडावा से चले थे जिनमें से तेरह रुपये कानपुर तक पहुँचने में खर्च हो चुके थे। कानपुर से कलकत्ता पहुँचने पर उनके पास एकतालीस रुपयों की, अर्थात् घर से निकलते समय की राशि से भी एक रुपया अधिक की पूँजी हो गयी। उन दिनों कलकत्ता, बंबई आदि स्थानों पर पहुँचनेवाले पहले सौदा-सट्टा अर्थात् फाटका में अपने भाग्य की आजमाइश करते थे। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि पूँजी के अभाव में नई जगह पर नौकरी के अतिरिक्त स्वतंत्र व्यवसाय चाहनेवालों के पास इसके सिवा दूसरा चारा नहीं था। मेरे परदादा को प्रारंभ से ही फाटके से चिढ़ थी। उनके विचार से यह एक प्रकार का जूआ ही था

जिसमें भाग्य को छोड़कर किसी विशेष पुरुषार्थ, बुद्धिबल या अध्यवसाय की आवश्यकता नहीं थी। अतः वे कलकत्ते में नहीं ठहरे और बिहार के शेरघाटी नगर में आकर उन्होंने कपड़े का व्यवसाय प्रारंभ किया। बाद में शेरघाटी के स्थान पर गया को जिले का मुख्यालय बना दिये जाने पर, सन 1853 में वे गया चले आये। उन्होंने शेरघाटी के डाल्टनगंज तथा हजारीबाग जिले के चतरा नामक स्थान पर भी अपनी व्यापारिक शाखाएँ स्थापित कीं। इनके अतिरिक्त बनारस में भी कपड़े की आढ़त की एक शाखा खोल दी। इन सभी स्थानों की शाखाएँ मुनीमों के सहारे चलती थीं। मेरे परदादा को बाग-बगीचों का भी बहुत शौक था जो मुझे गोद लेनेवाले पिता रायसाहब सुरजूलालजी और मेरे ताऊजी गयाप्रसादजी को भी विरासत के रूप में प्राप्त हुआ था। इसका प्रमाण यह है कि शेरघाटी, चतरा, डाल्टनगंज आदि अपने व्यापारिक स्थानों पर उन्होंने मकान के अलावा बगीचे भी लगवा रक्खे थे। हमारे परिवार का गया का बाग, जहाँ अंतिम रूप से हमारा परिवार बस गया था तथा जो व्यापार का मुख्यालय था, सात एकड़ का था जिसमें पानी पटाने की पक्की नालियाँ बनी थीं तथा केवल करोटन के पेड़ों की संख्या ही दो हजार से ऊपर थी। मेरे बचपन के समय यह बाग पूर्ण विकसित रूप में था जिसमें नौ माली काम करते थे जिनके नाम मुझे अभी तक याद हैं। इस बाग में 4 कूएँ, कई पक्के मकान तथा स्थान-स्थान पर बैठने की गोल बारहदरियाँ भी बनी थीं। मालीगण करोटन के पौधों की देखभाल के अतिरिक्त आम, अमरुद, शहतूत, फालसे, करौंदे आदि के सैकड़ों वृक्षों की देखभाल करते थे तथा उनमें पानी पटाते थे। बाग में एक टेनिस कोर्ट और क्लबघर भी बना था जिसमें अपने विद्यार्थि-काल में मैं अपने मित्रों के साथ बैडमिंटन खेला करता था। टेनिसकोर्ट बड़े लोगों के लिए था। इस बाग़ में हमारे परिवार का एक बर्फ बनाने का कारखाना भी था जिसका नाम **फल्गू आइस फैक्टरी** था और जो गया नगर में बर्फ का पहला कारखाना था। बाग़ में सुबह टहलने जाते समय इस आइस-फैक्टरी से बनकर निकलनेवाली बर्फ की सिल्लियों को मैं मंत्रमुग्ध-सा खड़ा देखता रहता था। बर्फ के कारखाने से निकलनेवाले पानी से पक्की नालियों द्वारा बगीचे की सिँचाई का काम भली प्रकार संपन्न हो जाता था। बर्फ की एक सिल्ली प्रतिदिन बाग से मील भर की दूरी पर नगर के चौक महल्ले में स्थित हमारी हवेली में आ जाती थी। भूसे से ढँकी हुई बर्फ की सिल्ली के पास लोहे की छेनी और हथौड़ी पड़ी रहती थी। मैं उससे बर्फ तोड़कर उसका चूरा बनाकर एक डंटल में लड्डू की तरह कस देता था और उस पर चीनी का घोल डालकर बड़े प्रेम से खाता और अपने

बालसखाओं को भी दिया करता था। घर में दो ही बालक थे, मैं और मेरा चचेरा भाई प्रहलाद। अतः दिनभर में कितनी बर्फ खत्म होती ! दूसरे दिन सुबह जितनी बर्फ गलने से बचती थी, बहा दी जाती थी और उसके स्थान पर दूसरी सिल्ली आ जाती थी। मुझे केवल अपने गया के बाग की ही स्मृति है क्योंकि उस समय तक शेरघाटी, डाल्टनगंज और चतरा आदि स्थानों से हमारे परिवार का संबंध, वहाँ का व्यापार बंद कर दिये जाने के कारण, बहुत कम हो गया था। बाद में मुझे पता चला कि वहाँ के बाग और अन्य संपत्ति या तो दूसरों द्वारा हथिया ली गई थीं या वे वहाँ रहनेवाले दूर के संबंधियों और वहाँ के मुनीमों को दे दी गयी थीं। कुछ औने-पौने मूल्य पर बेची भी गयी थीं। गया का वह बाग़ आज हमारी प्रमुख संपत्ति है जिसका चार भागों में बँटवारा कर दिया गया है जिसमें एक भाग पर मेरा स्वामित्व है। मैंने अपने हिस्से के बाग की बगल से एक सड़क बनाकर उसके पिछले भाग की कुछ भूमि प्लॉट बनाकर कुछ वर्ष पूर्व बेच दी थी जिसमें अब कोलोनी बन गयी है और उस कोलोनी का नामकरण भवन बनानेवालों ने मेरे नाम पर **गुलाबबाग** रख दिया है।

मेरे परदादा सदासुखजी के भैरोंलाल और भजनलाल नामक दो पुत्र हुए। इनमें, भैरोंलालजी के तीन पुत्र क्रमशः सुरजूलालजी, गयाप्रसादजी, और शीतलप्रसादजी हुए। भजनलालजी के एक पुत्र देवीलालजी हुए। उन्हें भी 1937 में वायसराय लॉर्ड लिनलिथ गो द्वारा रायसाहब की उपाधि दी गयी थी परंतु इन संस्मरणों में मैं रायसाहब के नाम से अपने गोद लेनेवाले पिता सुरजूलालजी को ही संबोधित करूँगा जिन्हें वायसराय चेम्सफोर्ड द्वारा 1919 में रायसाहब की उपाधि दी गयी थी। भैरोंलालजी को गोबर्धनदास नामक एक और पुत्र भी हुआ था परंतु वह विद्यार्थि-काल में ही अपनी पत्नी को बालविधवा के रूप में छोड़कर दिवंगत हो चुका था। गोर्बधनदासजी मेरे जन्मदाता पिता से काफी बड़े थे अतः गोवर्धनदासजी की विधवा पत्नी की गोद में मेरे पिताजी को लालन-पालन के लिए छोड़ दिया गया था। इसीलिए मुझे बचपन से ही वह पुत्रहीन बाल-विधवा अपने पौत्र के रूप में देखती थी और मुझ पर अपना विशेषाधिकार समझती थी। मैं भी बचपन में उसे मैयाजी कहकर पुत्र के समान उससे चिपटा रहता था। मेरी जन्मदात्री माँ तो मुझे 10 वर्ष की अल्पावस्था में ही छोड़कर चल बसी थी पर मैयाजी, मैं जब तक 13-14 वर्ष का हुआ, तब तक जीवित थी और मुझे माँ से भी अधिक उसकी याद बनी हुई है। भरे-पूरे घर में उस वृद्धा विधवा के स्नेह का एक मात्र अवलंबन मैं ही था अतः उसने अपने हृदय का समस्त संचित लाड़-प्यार मुझ पर उड़ेल रक्खा था। यद्यपि मेरी दादी, मेरे पिता शीतलप्रसादजी

की जन्मदात्री माता, मेरी उक्त मैयाजी की मृत्यु के 3-4 वर्षों बाद तक जीवित रही थी और बाद में 1941 ई0 में 95-96 वर्ष की अवस्था में उसका देहांत हुआ था, परंतु मैयाजी की तरह मुझ पर उसका एकछत्र अधिकार नहीं था, हालाँकि एक मात्र बालक-पौत्र होने के कारण उसका भी स्नेह बहुत अधिक मात्रा में मुझे मिलता रहा है। दिसंबर 1941 में उसकी मृत्यु के समय, मैं कविरूप में प्रसिद्ध हो चुका था और मेरा विवाह भी हो चुका था। उसकी मृत्यु पर मैंने निम्नलिखित कविता लिखी थी -

आज जर्जर तरु-शाखा टूटी
कई वसंत पूर्व ही अबसे
नाता तोड़ चुकी थी सबसे
नीरस, शुष्क खड़ी थी कबसे,
काल-चक्र की लूटी
देखा था इसने भी सावन
उर का नवोन्मेष मनभावन
इसके ही अंकुर से पावन
यह हरियाली फूटी
निज जीवन-रस देकर सारा
कलि-दल, फल-फूलों के द्वारा
यह जैसे गिरि से गिर धारा
भव-कारा से छूटी
आज जर्जर तरु-शाखा टूटी

पूर्ववर्णित मैयाजी के एक छोटे सगे भाई हरिबक्सजी चौधरी हमारे यहाँ मुकदमों की तथा जमींदारी के कामों की देखभाल के लिए प्रारंभ से ही रहते थे। मैं उन्हें मामाजी कहता था। वे एकाक्ष थे और बड़े कठोर स्वभाव के थे। नौकर-चाकर और सभी कर्मचारियों के लिए तो वे साक्षात् यमराज की तरह क्रोध की मूरत थे परंतु मेरे ऊपर वे प्यार बरसाने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे। मैं सहज ही उनसे अपनी कोई भी फरमाइश पूरी करवा लेता था। जिस प्रकार सिंह से सारा वन भयभीत रहता है परंतु सिंह-शिशु उसकी पीठ पर चढ़कर निःशंक क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार मामाजी से लोग कितने ही

आतंकित रहते हों, मेरे लिए तो वे मक्खन की डली जैसे मृदुल ही थे। उनके संबंध की एक मनोरंजक बात याद आ रही है। मेरे ताऊजी, जिन्हें मैं बाबाजी कहा करता था, मामाजी से बहुत विनोद किया करते थे। वे मामाजी के साथ ही बगीचे में रात को सोने चले जाया करते थे। उन्होंने एक दिन एक बड़ी विचित्र बात मामाजी के संबंध में बतायी जिसे सुनकर मैं चक्कर में पड़ गया। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या तुम जानते हो, तुम्हारे मामाजी की एक आँख कैसे नष्ट हो गयी। मैंने उत्सुकता से कहा कि मैं नहीं जानता, मुझे बताइए। बाबाजी ने कहा, 'तुम्हारे मामाजी ने रात में सोते समय अपनी एक आँख निकालकर बगीचे में, जहाँ वे खपरैल के घर में रहते हैं, एक ताखे पर रख दी। रात में एक गिलहरी ने उसे कोई खाने का सामान समझकर मुँह में भर लिया और भाग गयी। मामाजी ने बहुत खोज की पर न गिलहरी मिली न आँख। तब से ये बिचारे एक आँख के ही बने हुए हैं।' मैंने जब इस बात को मजाक समझ कर टालना चाहा तो बाबाजी ने कहा- 'तुम अपने मामाजी से पूछ लो, यह बात सच है या नहीं।' मामाजी से जब मैंने पूछा तो उन्होंने कहा कि बात तो सच्ची ही है। अब मैं सचमुच आश्चर्य में पड़ गया और सोचने लगा कि क्या मामाजी को यह चमत्कारिक शक्ति प्राप्त है कि वे अपनी आँख निकाल कर बाहर रख दें और फिर जब चाहें पुनः लगा लें। कई दिनों तक मैं इस उधेड़बुन में रहा। अंत में कई दिनों के बाद बारबार पूछने पर बाबाजी ने रहस्योद्घाटन किया कि मामाजी की एक आँख तो बचपन में चेचक से चली गयी थी पर उन्होंने बहुत खर्च करके कलकत्ता जाकर असली आँख जैसी पत्थर की स्पेशल आँख उसके स्थान पर लगवायी थी जिससे दिखाई तो क्या देता पर जो दूसरों को सचमुच की आँख की तरह लगती थी और निकट से देखने पर ही उसकी असलियत का पता चलता था। उस आँख को वे रात में सोते समय निकालकर रख देते थे जैसे लोग अपने बनवाये हुए दाँतों को सोते समय निकालकर रख देते हैं। बदकिस्मती से उनकी वही बड़े यत्न और व्यय से बनवायी हुई आँख गिलहरी ले गयी और उसके बाद से वे वैसे ही एकाक्ष रह गये जैसा भाग्य ने उन्हें बना दिया था।

जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, ज्येष्ठ पुत्र भैरोंलालजी की ओर से मेरे परदादा सदासुखजी के तीन जीवित पौत्र वयःक्रमानुसार रायसाहब सूरजूलालजी, गयाप्रसादजी तथा शीतलप्रसादजी थे। उनके दूसरे पुत्र भजनलालजी की ओर से केवल एक पौत्र देवीलालजी थे। गयाप्रसादजी का पहला पुत्र रामनिवास

विद्यार्थि-काल में ही दिवंगत हो चुका था। दूसरे पुत्र बनारसीलाल ही एक मात्र जीवित पुत्र थे। रायसाहब सुरजूलालजी को कोई पुत्र नहीं हुआ था, केवल एक पुत्री हुई थी जो विवाह के बाद तीन पुत्रियों को जन्म देकर दिवंगत हो चुकी थी। रायसाहब, जो परिवार के कर्ता तथा कुल संपत्ति अर्जित करनेवाले प्रमुख सदस्य थे, अपने लिए एक पुत्र गोद लेने को बहुत इच्छुक थे। गयाप्रसादजी का पहला पुत्र रामनिवास' जिसे मेरे पूर्व, रायसाहब ने गोद लेने का तय कर रक्खा था, बहुत ही तीव्र बुद्धि का बालक था। वह मैट्रिक की परीक्षा फर्स्ट डिवीजन में पास करके पटना पढ़ने को गया था जहाँ अचानक हैजे से उसकी मृत्यु हो गयी। उसका विवाह बंबई-स्थित नवलगढ़ के करोड़पति सेठ हेमराजजी कूलवाल की बहन से हुआ था। उसकी साध्वी पत्नी ने पति की मृत्यु के दिन से ही एक समय का भोजन छोड़ दिया था तथा पहले से अपनी मृत्यु के दिन की घोषणा करके ठीक एक वर्ष के बाद अपने पति की मृत्युतिथि के दिन ही अपना शरीर त्याग दिया था। इस इच्छामृत्यु की हमारे परिवार में बराबर चर्चा होती रहती थी. और अब भी उन दोनों आत्माओं का वार्षिक श्राद्ध एक ही दिन किया जाता है। रामनिवास की अकाल मृत्यु के बाद गयाप्रसादजी के एक मात्र पुत्र बनारसीलालजी ही जीवित थे और गयाप्रसादजी की पत्नी का देहांत हो चुका था अतः बनारसीलालजी को गोद नहीं लिया जा सकता था। ऐसी अवस्था में शीतलप्रसादजी अर्थात मेरे जन्मदाता पिता पर ही सब की आशा टिकी थी जिनका भी यद्यपि उस समय तक मैं ही एक मात्र पुत्र था परंतु उनकी उम्र कम होने के कारण दूसरे पुत्र की संभावना बनी हुई थी। दो पुत्र होने से ही वे अपने एक पुत्र को गोद दे सकते थे अन्यथा उनकी स्थिति भी गयाप्रसादजी की तरह रह जाती और रायसाहब को कहीं बाहर से पुत्र गोद लाना पड़ता। वे हमारे गाँव मंडावा से अपने कबीले अर्थात् दूर के पारिवारिक संबंधियों का एक बालक इस निमित्त से ले भी आये थे परंतु मेरे जन्मदाता पिता श्री शीतलप्रसादजी के दूसरा पुत्र वासुदेव नामक पैदा होने के कारण वह योजना स्थगित करके मुझे गोद जाने की अर्हता मिल गई।

मेरा वह छोटा भाई बहुत होनहार था परंतु 13-14 वर्ष की अल्पावस्था में सन् 1943 में ही पेट की थायसिस से उसका देहांत हो गया। वह उसी उम्र में कविताएं भी लिखने लगा था। लगता है, वह मुझे रायसाहब को गोद दिलाने के लिए ही संसार में आया था।

अब मैं अपने जन्म के पूर्व की परिस्थितियों और घटनाओं का जिक्र करूँगा। मेरे जन्मदाता पिता शीतलप्रसादजी मेरे पैतृक कुल में सब से छोटे भाई थे। उनको मेरे जन्म के पूर्व कई संतानें हो चुकी थीं जिनमें केवल मुझसे 8-9 वर्ष बड़ी गिल्ली देवी ही जीवित थी। मेरी इस बड़ी बहन का सन 1999 में 84-85 वर्ष की आयु में देहांत हो गया।

मेरी माता बड़े धार्मिक विचारों की थीं। नवलगढ़ के बंबई-स्थित करोड़पति सेठ मेघराजजी की ज्येष्ठ पुत्री होने के कारण उसकी शिक्षा-दीक्षा में कोई कोरकसर नहीं रक्खी गयी थी। मेरे नाना मेघराजजी बहुत शान-बानवाले व्यक्ति थे। करोड़ों की संपत्ति उन्होंने स्वयं उपार्जित की थी, इसलिए इसका भी उनके मन में थोड़ा अभिमान था। उन्होंने अंग्रेजी राज के जमाने में मेरी माता के लिए एक अंग्रेज गवर्नेस रक्खी थी जिसके कारण मेरी माता अंग्रेजी में धारावाहिक बात कर सकती थी जो उस समय के धनाढ्य मारवाड़ी परिवारों के लिए आश्चर्य की बात थी। इसके साथ ही मेरे नाना ने मेरी माँ को संस्कृत पढ़ाने के लिए एक पंडित भी रक्खा था। इस लिए 10-11 वर्ष की अवस्था तक आते-आते एक ओर तो मेरी माँ को अंग्रेजी का ज्ञान हो गया था, दूसरी ओर, संस्कृत के भर्तृहरि एवं दुर्गा-सप्तशती तथा गीता के श्लोकों को भी वह सहज ही आत्मसात् कर सकी थी। दुर्गासप्तशती का पाठ तो उसकी नित्य की पूजा का अंश था। उसके अंग्रेजी और संस्कृत के ज्ञान के कारण एक ओर तो मैं भी बचपन से ही अंग्रेजी में बातें करने लगा था, जो हमारे परिवार के लिए बड़े गौरव और हर्ष की बात थी, दूसरी ओर, गीता के दशम अध्याय और भर्तृहरि के कितने ही श्लोकों को भी कंठस्थ कर चुका था। मुझे याद है, मेरी माँ ने मुझे 6-7 वर्ष की अल्पावस्था में पंडितराज जगन्नाथ की गंगालहरी के श्लोकों को स्मरण कराने की भी चेष्टा की थी जिसका पहला श्लोक मुझे आज भी याद है। हिंदी पढ़ना-लिखना मैंने कब सीखा, मुझे याद नहीं था। दूसरों को हिंदी पढ़ते देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता था कि ये लोग हिंदी क्यों सीख रहे हैं, उसका ज्ञान तो भगवान जन्म के साथ ही दे देते हैं। शायद अपनी अत्यंत छोटी अवस्था में माँ के द्वारा हिंदी की शिक्षा प्राप्त हो जाने के कारण, जिसकी मुझे स्मृति नहीं रह गयी थी, मेरी ऐसी धारणा बन गयी थी। अंग्रेजी में बात करने में भी मैं अत्यंत छोटी अवस्था में ही इसलिए भी निपुण हो गया था क्योंकि मेरी माँ और पिताजी भी सदैव मुझे इसके लिए प्रेरित करते रहते थे। मुझे याद है, जब मैं

सिनेमा जाने की जिद करता तो मेरी माँ इसी शर्त पर जाने की अनुमति देती कि मैं लौटकर खेल की पूरी कहानी अंग्रेजी में उसे सुना दूँगा। हमारे व्यापारी घर में अंग्रेजों के शासनकाल में उन दिनों अंग्रेजी में बातें कर लेना बहुत बड़ी योग्यता समझी जाती थी जो मुझे सहज ही प्राप्त हो गयी थी। मैं अपने गौरवर्ण, भूरी आँखें और सुनहरे बालों के कारण तो अंग्रेज बालकों जैसा लगता ही था, अंग्रेजी बोलने की सामर्थ्य ने मेरा महत्त्व और बढ़ा दिया था। गया नगर में हमारे परिवार द्वारा स्थापित बिजली सप्लाई करनेवाली हमारी कंपनी में एक जरमन इंजीनियर था जिसकी पत्नी से अंग्रेजी उच्चारण सीखने के लिए मुझे प्रतिदिन भेजा जाता था। जितनी देर मैं उसके पास रहता, वह सिग्रेट पीती रहती थी, जिससे निकलनेवाले धूएँ की ओर बार-बार मेरा ध्यान चला जाता था और वह क्या सिखाती है, उस पर मैं पूरी तरह ध्यान नहीं दे पाता था। उसके द्वारा सिखाये जरमन ढंग के उच्चारण से जब मैं अंग्रेजी के शब्द बोलता तो उसे सुनकर मेरे स्कूल के शिक्षक हैरानी में पड़ जाते थे।

अपने अंग्रेज़ी के ज्ञान से लाभ उठाने की एक घटना मुझे याद आ रही है। एक बार मेरे चचेरे भाई प्रहलाद का किसी दूसरे बालक से झगड़ा हो गया। फरियाद रायसाहब के पास पहुँची। चूँकि मैं घटना का प्रत्यक्षदर्शी था इस लिए उस बालक की फरियाद पर सच्ची बात जानने के लिए मुझे बुलाया गया। गलती मेरे चचेरे भाई की थी पर मैं उसके सामने उसके विपरीत बोलना नहीं चाहता था। मैंने कहा कि मैं अंग्रेजी में पूरी घटना का विवरण सुना दूँगा। मैं जानता था कि मेरा भाई अंग्रेजी नहीं समझ सकता है। मैंने सच्ची बात अंग्रेजी में रायसाहब को सुना दी। वे मेरे अंग्रेजी के ज्ञान पर तो प्रसन्न हुए ही, मेरी बुद्धिमत्ता की भी उन्होंने प्रशंसा की।

मेरी माँ का 10-11 वर्ष की अल्पावस्था में अंग्रेजी, हिंदी और संस्कृत का इतना ज्ञान अर्जित कर लेना एक असाधारण बात थी क्योंकि उसी अवस्था में उसका विवाह हो चुका था और हमारे गया के घर के शुद्ध व्यापारिक परिवेश में पढ़ने-लिखने का कोई वातावरण ही नहीं था। मेरी माता के पास पुस्तकों का भी अच्छा संग्रह था पर वह कभी पढ़ने की चेष्टा भी करती तो उसे घर की अन्य महिलाओं का ताना ही सुनना पड़ता। मेरी माँ अपने मृदुल स्वभाव के कारण उनके तानों को हँसकर यह कहते हुए टाल देती थी कि कोई बात नहीं, मैं रात में पढ़ूँगी। उस समय तो मुझे कोई पढ़ते देखकर ताना देने नहीं आयेगा।

मेरे जन्मदाता पिता शीतलप्रसादजी भाइयों में सबसे छोटे सदस्य होने के कारण पढ़ने-लिखने में कोरे रह गये थे। मेरी माँ ने आते ही उन्हें हिंदी और अंग्रेजी पढ़ने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि विवाह के बाद विद्यालय में पढूँगा तो लोग हँसेंगे। इस पर माँ ने कहा- 'रात में शिक्षक से अंग्रेजी पढ़ लीजिए और हिंदी का ज्ञान मैं करा दूँगी।' पिताजी को अपने अशिक्षित रहने की ग्लानि महसूस हुई और उन्होंने एक डेढ़ साल में ही अंग्रेजी में बोलने और स्टेट्समैन जैसे अंग्रेजी अखवार को पढ़ने की योग्यता प्राप्त कर ली। मैं जब बालक था तो वे अँग्रेजी की पुस्तक अरेबियन नाइट पढ़कर मुझे उसका अर्थ समझाया करते थे। हिंदी और संस्कृत का ज्ञान भी उन्होंने इतना हासिल कर लिया कि तुलसीकृत रामायण के सुंदरकांड और भगवद् गीता के एक अध्याय का पाठ वे नित्य करते थे। विशेष अवसरों पर वे संपूर्ण गीता का पाठ भी कर डालते थे। मुझे उन्होंने चाणक्य-नीति के कई श्लोक भी कंठस्थ कराये थे। शिक्षक और मेरी माँ के सहयोग का कितना भी अंश रहा हो, बिना आंतरिक लगन के मेरे पिताजी का अल्प समय में हिंदी और अंग्रेजी का ज्ञान अर्जित करने का यह चमत्कार संभव नहीं था। उनका हिंदी-अंग्रेजी की पढ़ाई में पूरे जोश से लग जाने का एक कारण और भी था। विवाह के बाद जब वे पहली बार ससुराल गये थे तो मेरे नानाजी ने उनसे पूछा - 'कँवरजी! अंग्रेजी कहाँ तक पढ़ी है?' मेरे पिताजी उस समय अंग्रेजी की ए. बी. सी. डी. भी नहीं जानते थे परंतु लोगों से सुनी हुई बातों के आधार पर उन्होंने कह दिया - 'अंग्रेजी में आये हुए तार पढ़ लेता हूँ' उनकी समझ में अंग्रेजी में आये हुए तार पढ़ लेना ही बड़ी बात थी। मेरे नानाजी ने हँसकर कहा - 'तार पढ़ लेना कौन-सी अंग्रेजी की योग्यता है!'

बात पिताजी को लग गयी और उन्होंने निश्चय कर लिया कि अंग्रेजी की विशेष योग्यता हासिल करके ही वे ससुराल जायँगे। उन्होंने विशेष परिश्रम और लगन से वह योग्यता हासिल भी कर ली परंतु जब वे दूसरी बार ससुराल गये, उसके पूर्व ही मेरे नानाजी का देहांत हो चुका था।

मेरा जन्म

मेरे गोद लेनेवाले पिता रायसाहब तो पुत्र के लिए चिंतित थे ही और अधिक उम्र हो जाने के कारण सिवा किसी बालक को गोद लेने के, उनके पास दूसरा विकल्प भी नहीं था, परंतु मेरे जन्मदाता पिता शीतलप्रसादजी को भी प्रारंभ में 8-9 वर्षों की एक जीवित कन्या गिल्ली देवी के अतिरिक्त कोई पुत्र

नहीं था और पुत्र की लालसा में मेरी माता के साथ वे भी विभिन्न प्रकार की मन्नत-मनोतियाँ मनाते रहते थे और साधु-संतों के आशीर्वाद के लिए तीर्थस्थानों का चक्कर लगाते रहते थे। मैं पहले कह चुका हूँ कि मेरी माता अत्यंत धार्मिक संस्कारों की महिला थी और सिद्ध-महात्माओं में उसकी बड़ी आस्था थी। उसने सुना कि राजस्थान के निमाई नामक स्थान के बाहर पहाड़ियों में कोई सिद्ध महात्मा रहते हैं जो बड़े चमत्कारी संत हैं। वह मेरे पिताजी के साथ वहाँ पहुँची। महात्माजी ने पहाड़ी पर बनी अपनी कुटिया से ही पुकारा— 'देखो एक सेठानी बड़ी दूर से पुत्र की लालसा में आ रही है। क्या साधुसंतों के पास पुत्रों की थैलियाँ धरी हैं! पुत्र पाने के लिए बड़ी तपस्या करनी पड़ती है।' मेरी माँ ने सिर झुकाते हुए कहा, 'महाराज! जो तपस्या बतायेंगे, मैं कर लूँगी। मुझे पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद दीजिए।' महात्मा बोले— 'बेटी! एक वर्ष तक अपने हाथों से पीसकर एक ही अनाज खाना होगा और धरती पर सोना होगा।' माँ ने साधुजी का कथन गाँठ बाँध लिया। गया लौटकर वह अपने हाथों से चक्की चलाकर गेहूँ पीसती और साग-भाजी के साथ अपने हाथ से रोटी पकाकर खाती थी तथा जमीन पर कंबल बिछाकर सोती थी। यह उस हालत में, जब हमारे घर में दो-दो रसोइये थे और एक साथ पच्चीस तीस व्यक्तियों का भोजन बनता था, बाग में कितनी ही गायें रहती थीं और इतना दूध-दही घर में उपलब्ध रहता था कि उसे बाँटना पड़ता था।

एक साल के अंदर ही मेरी माँ ने गर्भधारण किया। गर्भावस्था के दिनों में वह गया-स्थित हमारे बाग के एक भवन में चली गयी। मेरी माँ के बाग में रहने के समय गया में एक महात्मा पधारे जिन्हें वहाँ ठहराया गया। वे संस्कृत के भी विद्वान थे। माँ ने उनसे वाल्मीकि रामायण की कथा कहने की प्रार्थना की। इस कथा में काफी समय लगनेवाला था अतः महात्माजी के लिए बाग में स्थित हमारी कोठी के निकट एक ऊँचे टीले पर तीन पक्के कमरे और लोगों के बैठने के लिए पक्का सभास्थल बना दिया गया। वहाँ प्रतिदिन वाल्मीकि रामायण की कथा होने लगी जो मेरी माता के साथ अन्य स्त्रियाँ भी सुनती थीं। संन्यासी कथावाचकजी के लिए बना हुआ वह भवन और वह सभास्थल आज भी वहाँ अवस्थित है। मेरी माँ ने उक्त अवसर पर आँवला, पीपल, बट और नीम के 4 पौधों को एक साथ सभास्थल के एक किनारे लगा दिया था। बाद में उनकी सम्मिलित जड़ों पर एक पक्का चबूतरा बना दिया गया था। मेरे बाग में

आनेवाला व्यक्ति यह देखकर चकित रह जाता था कि एक स्थान पर चारों पवित्र वृक्ष एक साथ कैसे लगे हुए है। इनकी जड़ें चबूतरे से छिपी रहने के कारण कुछ लोग यह भी सोचने लगते थे कि उक्त चार प्रकार के वृक्षों की शाखाएँ एक ही तने से फूट पड़ी हैं। खेद है कि अब वह चबूतरा टूट चुका है और नीम और आँवले के पेड़ नष्ट हो गये हैं।

बाल्मीकि रामायण गर्भावस्था में मेरे कानों में पड़ती रही है, शायद इसी कारण मेरी भगवान राम के चरित के प्रति इतनी श्रद्धा है और मैं **अहल्या** जैसी काव्यकृति का सृजन कर सका हूँ। यही नहीं, मेरे प्रबंधकाव्य **आलोकवृत्त** में प्रच्छन्न रूप से रामकथा के रूपक का आद्यंत निर्वाह हो गया है। हाल में माँ के बनाये हुए मंदिर का और उसके सामने के पक्के सभास्थल का मैंने जीर्णोद्धार करा दिया है।

मेरे जन्म के कुछ दिन पूर्व हमारे घर में चिंतामणि नामक एक ज्योतिर्षी बदरीनारायण से पधारे थे। मेरे पिताजी ने अपनी जन्मकुंडली उनके आगे रख दी और पूछा कि महाराज क्या मेरी जन्मकुंडली में पुत्र का योग है। चिंतामणिजी ने जन्मकुंडली देखकर संभवतः अपने प्रातिभ ज्ञान से कहा—'सेठजी! आपको इस बार पुत्र होगा, जो अत्येत मेधावी और विद्याप्रेमी होगा। उन्होंने मेरे रूप-रंग की भी भविष्यवाणी कर दी और कहा 'वह अत्यंत गौरवर्ण का, गुलाब के फूल जैसा सुंदर होगा तथा उसके सिर के बाल सुनहरे रंग के होंगे।' मेरी 6-7 वर्ष की गिल्ली नामक बहन जो पास ही खड़ी थी और जो स्वयं गहरे काले रंग की थी, अपने भाई के रूप रंग का यह वर्णन सुनकर ख़ुशी से उछलती हुई अपनी माँ के पास घर के अंदर गयी और बोली, 'नीचे दुकान में एक ज्योतिषीजी बदरीनाथ से आये हैं। उन्होंने मेरे लिए भाई होने की बात कही है और यह कहा है कि वह अत्यंत गौरवर्ण का गुलाब के फूल जैसा सुंदर होगा।' मेरी माँ ने हँसते हुए कहा, 'यदि ऐसा हुआ तो उसका नाम गुलाब ही रख लेंगे।' **मेरा जन्म 21 फरवरी 1924 के दिन भोर के समय हुआ था,** मेरे जन्म के तुरत बाद विद्याप्रेमी और मेधावी होने की बात को तो कोई जान नहीं सकता था, परंतु रूप-रंग की बात ज्योतिषीजी के कहे अनुसार ही सही निकली। मेरे पिताजी ने ज्योतिषीजी के घर उनकी भविष्यवाणी के सच निकलने के संबध में सूचना भेजी तो ज्योतिषी के पुत्र द्वारा ज्योतिषीजी के स्वर्गवास की सूचना मिली।

परिवार की वंशावली

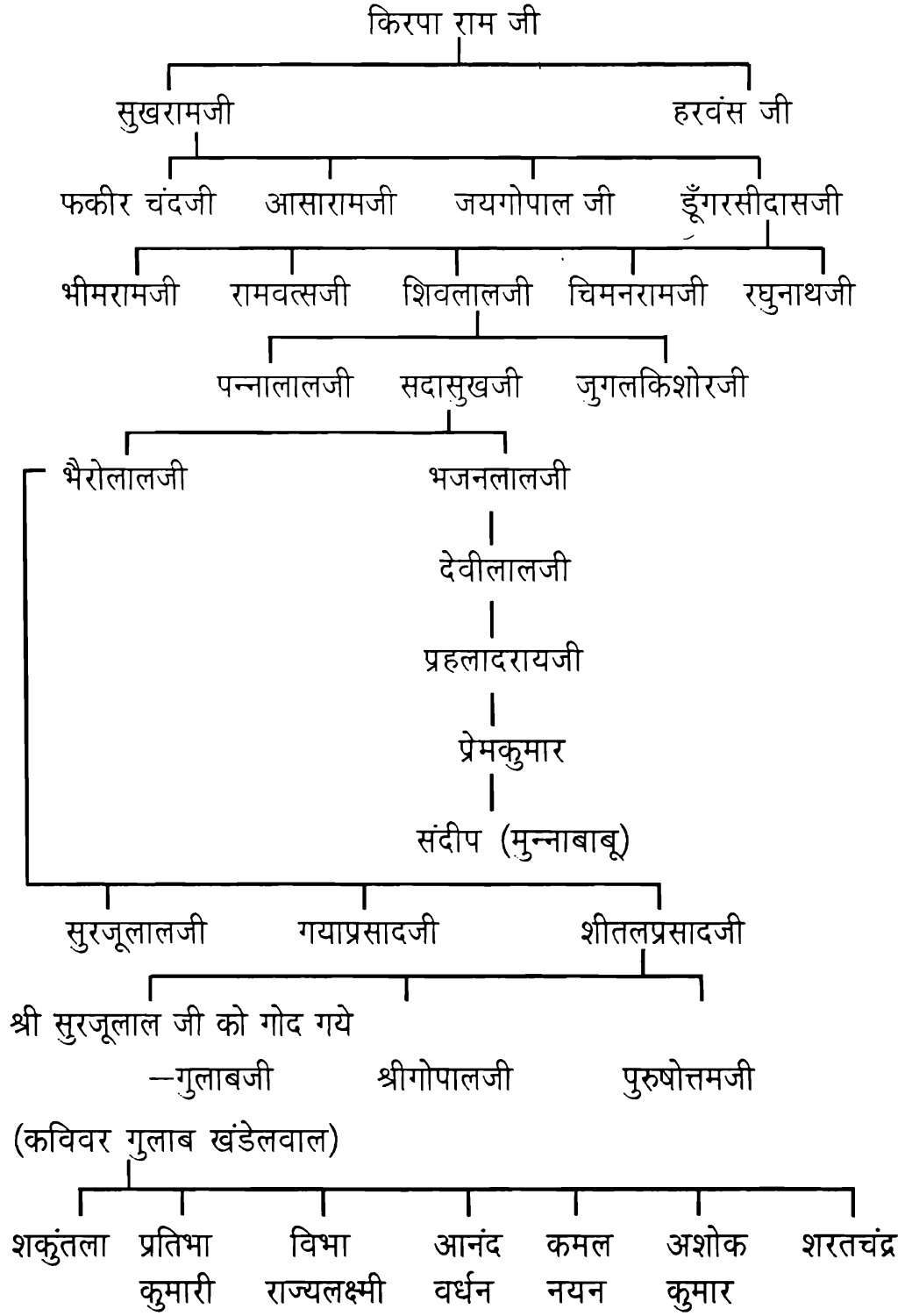
किरपा राम जी
सुखरामजी
हरवंस जी
फकीर चंदजी
आसारामजी
जयगोपाल जी
डूँगरसीदासजी
भीमरामजी
रामवत्सजी
शिवलालजी
चिमनरामजी
रघुनाथजी
पन्नालालजी
सदासुखजी
जुगलकिशोरजी
भैरोलालजी
भजनलालजी
देवीलालजी
प्रहलादरायजी
प्रेमकुमार
संदीप (मुन्नाबाबू)
सुरजूलालजी
गयाप्रसादजी
शीतलप्रसादजी
श्री सुरजूलाल जी को गोद गये
—गुलाबजी
श्रीगोपालजी
पुरुषोत्तमजी
(कविवर गुलाब खंडेलवाल)
शकुंतला
प्रतिभा कुमारी
विभा राज्यलक्ष्मी
आनंद वर्धन
कमल नयन
अशोक कुमार
शरतचंद्र

जन्म-स्थान, जन्म-तिथि एवं जाति-गोत्र :-

कवि गुलाब का जन्म 21 फरवरी सन् 1924 को उनके ननिहाल, राजस्थान के नवलगढ़ ग्राम में, खंडेलवाल वैश्य परिवार में हुआ था। कविवर गुलाब की जन्म-पत्री निम्नलिखित है : --

जन्मतिथि : फाल्गुनवदि - 1 संवत् 1980 वि0।

21-2-1924 सन्।

अथ जन्म-ग्रहाः।